International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Volume 6 Issue 5, July-August 2022 Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

सामाजिक विकास और परिवर्तन

डॉ सीमा शर्मा

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

सार

सामाजिक परिवर्तन, समाज आधारभूत परिवर्तनों पर प्रकाश डालने वाला एक विस्तृत एवं कठिन विषय है। इस प्रक्रिया में समाज की संरचना एवं कार्यप्रणाली का एक नया जन्म होता है। इसके अन्तर्गत मूलतः प्रस्थिति, वर्ग, स्तर तथा व्यवहार के अनेकानेक प्रतिमान बनते एवं बिगड़ते हैं। समाज गतिशील है और समय के साथ परिवर्तन अवश्यंभावी है।

आधुनिक संसार में प्रत्येक क्षेत्र में विकास हुआ है तथा विभिन्न समाजों ने अपने तरीके से इन विकासों को समाहित किया है, उनका उत्तर दिया है, जो कि सामाजिक परिवर्तनों में परिलक्षित होता है। इन परिवर्तनों की गति कभी तीव्र रही है कभी मन्द। कभी-कभी ये परिवर्तन अति महत्वपूर्ण रहे हैं तो कभी बिल्कुल महत्वहीन। कुछ परिवर्तन आकस्मिक होते हैं, हमारी कल्पना से परे और कुछ ऐसे होते हैं जिसकी भविष्यवाणी संभव थी। कुछ से तालमेल बिठाना सरल है जब कि कुछ को सहज ही स्वीकारना कठिन है। कुछ सामाजिक परिवर्तन स्पष्ट है एवं दृष्टिगत हैं जब कि कुछ देखे नहीं जा सकते, उनका केवल अनुभव किया जा सकता है। हम अधिकतर परिवर्तनों की प्रक्रिया और परिणामों को जाने समझे बिना अवचेतन रूप से इनमें शामिल रहे हैं। जब कि कई बार इन परिवर्तनों को हमारी इच्छा के विरुद्ध हम पर थोपा गया है। कई बार हम परिवर्तनों के मूक साक्षी भी बने हैं। व्यवस्था के प्रति लगाव के कारण मानव मस्तिष्क इन परिवर्तनों के प्रति प्रारंभ में शंकालु रहता है परन्तु शनैः उन्हें स्वीकार कर लेता है।

प्रक्रम (process) गति का सूचक है। किसी भी वस्तु की आंतरिक बनावट में भिन्नता आना परिवर्तन है। जब एक अवस्था दूसरी अवस्था की ओर सुनिश्चित रूप से अग्रसर होती है तो उस गति को प्रक्रम कहा जाता है। इस अर्थ में जीव की अमीबा से मानव तक आने वाली गति, भूप्रस्तरण (stratification) की क्रियाएँ तथा तरल पदार्थ का वाष्प में आना प्रक्रम के सूचक हैं। प्रक्रम से ऐसी गति का बोध होता है जो कुछ समय तक निरंतरता लिए रहे। सामान्य जगत् में जड़ और चेतन, पदार्थ और जीव में आने वाले ऐसे परिवर्तन प्रक्रम के द्योतक हैं। इस प्रकार प्रक्रम शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता है।

प्रक्रम के इस मूल ग्रंथ के उपयोग सामाजिक जीवन के समझने के लिए किया गया है। सामाजिक शब्द से उस व्यवहार का बोध होता है जो एक से अधिक जीवित प्राणियों के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करे, जिसका अर्थ निजी न होकर सामूहिक हो, जिसे किसी समूह द्वारा मान्यता प्राप्त हो और इस रूप में उसकी सार्थकता भी सामूहिक हो। एक समाज में कई प्रकार के समूह हो सकते हैं जो एक या अनेक दिशाओं में मानव व्यवहार को प्रभावित करें। इस अर्थ में सामाजिक प्रक्रम वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था अथवा सामाजिक क्रिया की कोई भी इकाई या समूह अपनी एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर निश्चित रूप से कुछ समय तक अग्रसर होने की गति में हो।

How to cite this paper: Dr. Seema Sharma "Social Development and Change" Published in International Journal of Trend in Scientific Research and Development (ijtsrd), ISSN: 2456-6470, Volume-6 | Issue-5, August 2022, pp.1033-1038, URL: www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd50604.pdf

IJTSRD50604

Copyright © 2022 by author (s) and International Journal of Trend in Scientific Research and Development Journal. This is an Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (CC BY 4.0) (http://creativecommons.org/licenses/by/4.0)

परिचय

सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत हम मुख्य रूप से तीन तथ्यों का अध्ययन करते हैं-

- सामाजिक संरचना में परिवर्तन,
- संस्कृति में परिवर्तन एवं
- परिवर्तन के कारक।

सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमुख परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

मकीवर एवं पेज(R.M. MacIver and C.H. Page) ने अपनी पुस्तक सोसायटी (society) में सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए बताया है कि समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष

संबंध सामाजिक संबंधों से है और उसमें आए हुए परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहेंगे।

डेविस(K. Davis) के अनुसार सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना एवं प्रकार्यों में परिवर्तन है।

एच0 एम0 जॉनसन(H.M. Johnson) ने सामाजिक परिवर्तन को बहुत ही संक्षिप्त एवं अर्थपूर्ण शब्दों में स्पष्ट करते हुए बताया कि मूल अर्थों में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ संरचनात्मक परिवर्तन है। जॉनसन की तरह गिडेन्स ने बताया है कि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बुनियादी संरचना (Underlying Structure) या बुनियादी संस्था (Basic Institutions) में परिवर्तन से है।[1]

ऊपर की परिभाषाओं के संबंध में यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया है। समाज के किसी भी क्षेत्र में विचलन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। विचलन का अर्थ यहाँ खराब या असामाजिक नहीं है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक आदि सभी क्षेत्रों में होने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। यह विचलन स्वयं प्रकृति के द्वारा या मानव समाज द्वारा योजनाबद्ध रूप में हो सकता है। परिवर्तन या तो समाज के समस्त ढाँचे में आ सकता है अथवा समाज के किसी विशेष पक्ष तक ही सीमित हो सकता है। परिवर्तन एक सर्वकालिक घटना है। यह किसी-न-किसी रूप में हमेशा चलने वाली प्रक्रिया है। परिवर्तन क्यों और कैसे होता है, इस प्रश्न पर समाजशास्त्री अभी तक एकमत नहीं हैं। इसलिए परिवर्तन जैसी महत्वपूर्ण किन्तु जटिल प्रक्रिया का अर्थ आज भी विवाद का एक विषय है। किसी भी समाज में परिवर्तन की क्या गति होगी, यह उस समाज में विद्यमान परिवर्तन के कारणों तथा उन कारणों का समाज में सापेक्षिक महत्व क्या है, इस पर निर्भर करता है। सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए यहाँ इसकी प्रमुख विशेषताओं की चर्चा अपेक्षित है।

एक दृष्टि से विशिष्ट दिशा में होने वाले परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था के एक भाग के अंतर्गत देखे जा सकते हैं तथा दूसरी से सामाजिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से। प्रथम प्रकार के परिवर्तन के तीन रूप हैं-

1. **आकार के आधार पर संख्यात्मक रूप से परिभाषित**- जनसंख्या की वृद्धि, एक स्थान पर कुछ वस्तुओं का पहले से अधिक संख्या में एकत्र होना, जैसे अनाज की मंडी में बैलगाड़ियों या ग्राहकों का दिन चढ़ने के साथ बढ़ना, इसके उदाहरण हैं। मैकईश्वर ने इसके विपरीत दिशा में उदाहरण नहीं दिए हैं, किंतु बाजार का शाम को समाप्त होना, बड़े नगर में दिन के 8 से 10 बजे के बीच बसों या रेलों द्वारा बाहरी भाग से भीतरी भागों में कई व्यक्तियों का एकत्र होना तथा सायंकाल में विसर्जित होना ऐसे ही उदाहरण हैं। अकाल तथा महामारी के फैलने से जनहानि भी इसी प्रकार के प्रक्रम के द्योतक हैं।[2]
2. **संरचनात्मक तथा क्रियात्मक दृष्टि से गुण में होने वाली परिवर्तन**- किसी भी सामाजिक इकाई में आंतरिक लक्षणों का प्रादुर्भाव होना या उनका लुप्त होना इस प्रकार के प्रक्रम के द्योतक हैं। जनतंत्र के लक्षणों का लघु रूप से पूर्णता की ओर बढ़ना ऐसा ही प्रक्रम है। एक छोटे कस्बे का नगर के रूप में बढ़ना, प्राथमिक पाठशाला का माध्यमिक तथा उच्च शिक्षणालय के रूप में सम्मुख आना, छोटे से पूजा स्थल का मंदिर या देवालय की अवस्था प्राप्त करना विकास के उदाहरण हैं। विकास की क्रिया से आशय उन गुणों की अभिवृद्धि से है जो एक अवस्था में लघु रूप से दूसरी अवस्था में वृहत् तथा अधिक गुणसंपन्न स्थिति को प्राप्त हुए हैं। यह वृद्धि केवल संख्या या आकार की नहीं, वरन् आंतरिक गुणों की है। इस भाँति की वृद्धि संरचना में होती है और क्रियाओं में भी। इंग्लैंड में प्रधानमंत्री और संसद के गुण रूपी वृद्धि (प्रभाव या शक्ति की वृद्धि) में निरंतरता देखी गई है। इस विकास की दो दिशाएँ थीं। इन्हें किसी भी दिशा से देखा जा सकता है। भारत में कांग्रेस का उदय और स्वतंत्रता की प्राप्ति एक ओर तथा ब्रिटिश सरकार का निरंतर शक्तिहीन होना दूसरी ओर इसी रूप से देखा जा सकता है। जब तक सामाजिक विकास में नई आने वाली गुण संबंधी अवस्था को पहले आने वाली अवस्था से हेय या श्रेय बताने का प्रयास नहीं किया जाता, तब तक सामाजिक प्रक्रम विकास व ह्रास की स्थिति स्पष्ट करते हैं।
3. **निश्चित मर्यादाओं के आधार पर लक्ष्यों का परिवर्तन**- जब एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर जाना सामाजिक रूप से स्वीकृत वा श्रेय माना जाए तो उस प्रकार का प्रक्रम उन्नति या प्रगति का रूप लिए होता है और जब सामाजिक मान्यताएँ परिवर्तन द्वारा लाई जाने वाली दिशा को हीन दृष्टि से देखें तो उसे पतन या विलोम होने की प्रक्रिया कहा जाएगा। रूस में साम्यवाद की ओर बढ़ाने वाले कदम प्रगतिशील माने जाएँगे, अमरीका में राजकीय सत्ता बढ़ाने वाले कदम पतन की परिभाषा तक पहुँच जाएंगे, शूद्र वर्ण के व्यक्तियों का ब्राह्मण वर्ण में खान-पान होना समाजवादी कार्यक्रम की मान्यताओं में प्रगति का द्योतक है और परंपरागत व्यवस्थाओं के अनुसार अध:पतन का लक्षण। कुछ व्यवस्थाएँ एस समय की मान्यताओं के अनुसार श्रेयस्कर हो सकती हैं और दूसरे समय में उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखा जा सकता है। रोम में ग्लेडिएटर की व्यवस्था, या प्राचीन काल में दास प्रथा की अवस्था में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर भावनाएँ निहित थीं। समाज में विभिन्न वर्ग या समूह होते हैं, उनसे मान्यताएँ निर्धारित होती हैं। एक समूह की मान्यताएँ कई बार संपूर्ण समाज के अनुरूप होती हैं। कभी-कभी वे विपरीत दिशाओं में भी जाती हैं और उन्हीं के अनुसार विभिन्न सामाजिक परिवर्तनों का मूल्यांकन श्रेय वा हेय दिशाओं में किया जा सकता है। जब तक सामाजिक मान्यताएँ स्वयं न बदल जाएँ, वे परिवर्तनों को प्रगति या पतन की परिभाषा लंबे समय तक देती रहती हैं।[3]

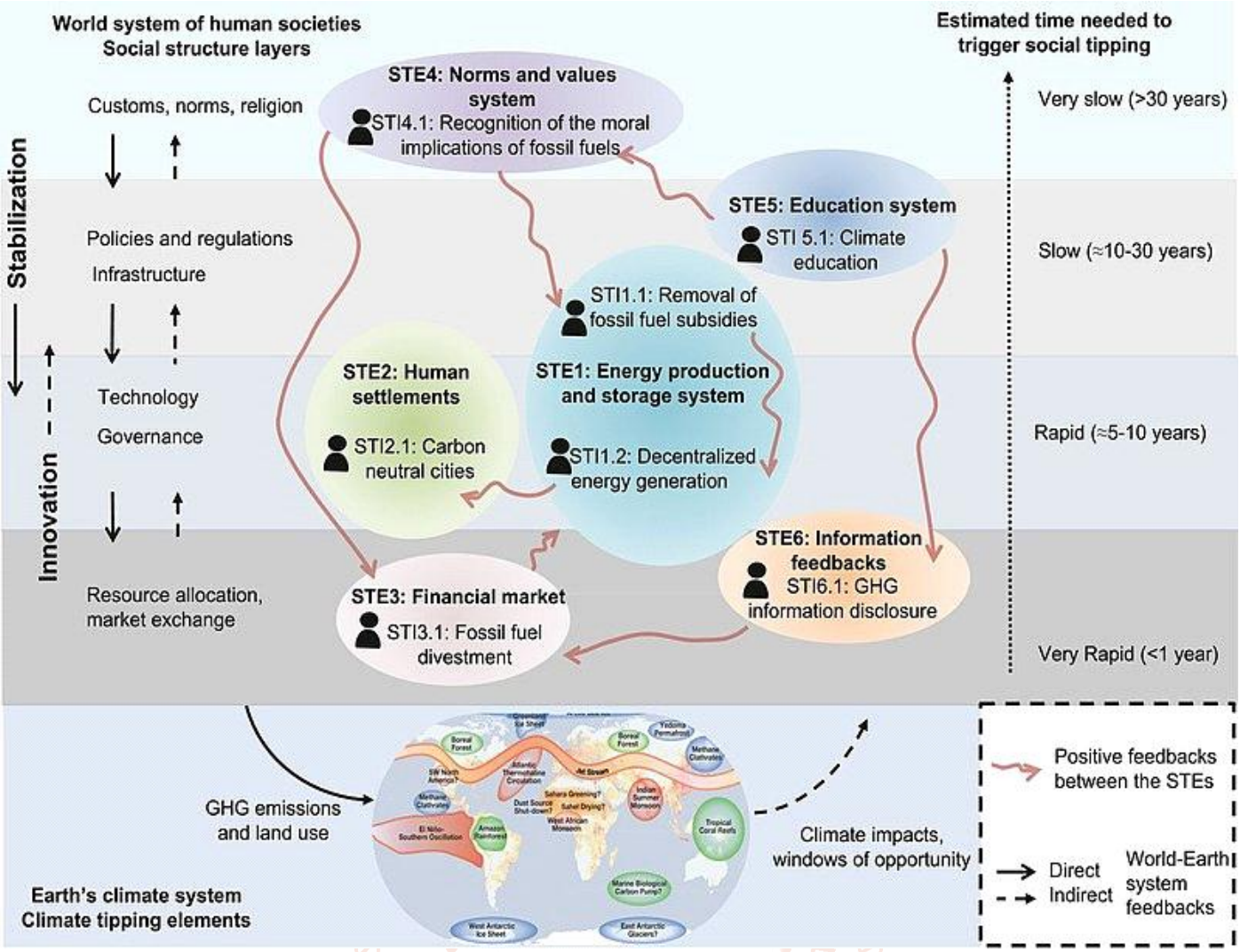

सामाजिक परिवर्तन विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

1. सामाजिक परिवर्तन एक विश्वव्यापी प्रक्रिया (Universal Process) है। अर्थात् सामाजिक परिवर्तन दुनिया के हर समाज में घटित होता है। दुनिया में ऐसा कोई भी समाज नजर नहीं आता, जो लम्बे समय तक स्थिर रहा हो या स्थिर है। यह संभव है कि परिवर्तन की रफ्तार कभी धीमी और कभी तीव्र हो, लेकिन परिवर्तन समाज में चलने वाली एक अनवरत प्रक्रिया है।

2. सामुदायिक परिवर्तन ही वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन है। इस कथन का मतलब यह है कि सामाजिक परिवर्तन का नाता किसी विशेष व्यक्ति या समूह के विशेष भाग तक नहीं होता है। वे ही परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन कहे जाते हैं जिनका प्रभाव समस्त समाज में अनुभव किया जाता है।[4]

3. सामाजिक परिवर्तन के विविध स्वरूप होते हैं। प्रत्येक समाज में सहयोग, समायोजन, संघर्ष या प्रतियोगिता की प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं जिनसे सामाजिक परिवर्तन विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। परिवर्तन कभी एकरेखीय (Unilinear) तो कभी बहुरेखीय (Multilinear) होता है। उसी तरह परिवर्तन कभी समस्यामूलक होता है तो कभी कल्याणकारी। परिवर्तन कभी चक्रीय होता है तो कभी उद्विकासीय। कभी-कभी सामाजिक परिवर्तन क्रांतिकारी भी हो सकता है। परिवर्तन कभी अल्प अवधि के लिए होता है तो कभी दीर्घकालीन।

4. सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा सापेक्षिक (Irregular and Relative) होती है। समाज की विभिन्न इकाइयों के बीच परिवर्तन की गति समान नहीं होती है।

5. सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं। समाजशास्त्री मुख्य रूप से सामाजिक परिवर्तन के जनसांख्यिकीय (Demographic), प्रौद्योगिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारकों की चर्चा करते हैं। इसके अलावा सामाजिक परिवर्तन के अन्य कारक भी होते हैं, क्योंकि मानव-समूह की भौतिक (Material) एवं अभौतिक (Non-material) आवश्यकताएँ अनन्त हैं और वे बदलती रहती हैं।

6. सामाजिक परिवर्तन की कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अनेक आकस्मिक कारक भी सामाजिक परिवर्तन की स्थिति पैदा करते हैं।

विलबर्ट इ॰ मोर (Wilbert E. Moore, 1974) ने आधुनिक समाज को ध्यान में रखते हुए सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं की चर्चा अपने ढंग से की है, वे हैं-

1. सामाजिक परिवर्तन निश्चित रूप से घटित होते रहते हैं। सामाजिक पुनरुत्थान के समय में परिवर्तन की गति बहुत तीव्र होती है।[5]

2. बीते समय की अपेक्षा वर्तमान में परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यधिक तीव्र होती है। आज परिवर्तनों का अवलोकन हम अधिक स्पष्ट रूप में कर सकते हैं।

3. परिवर्तन का विस्तार सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में देख सकते हैं। भौतिक वस्तुओं के क्षेत्र में, विचारों एवं संस्थाओं की तुलना में, परिवर्तन अधिक तीव्र गति से होता है।
4. हमारे विचारों एवं सामाजिक संरचना पर स्वाभाविक ढंग और सामान्य गति के परिवर्तन का प्रभाव अधिक पड़ता है।
5. सामाजिक परिवर्तन का अनुमान तो हम लगा सकते हैं, लेकिन निश्चित रूप से हम इसकी भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं।
6. सामाजिक परिवर्तन गुणात्मक (Qualitative) होता है। समाज की एक इकाई दूसरी इकाई को परिवर्तित करती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक पूरा समाज उसके अच्छे या बुरे प्रभावों से परिचित नहीं हो जाता।
7. आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन न तो मनचाहे ढंग से किया जा सकता है और न ही इसे पूर्णतः स्वतंत्र और असंगठित छोड़ दिया जा सकता है। आज हर समाज में नियोजन (Planning) के द्वारा सामाजिक परिवर्तन को नियंत्रित कर वांछित लक्ष्यों की दिशा में क्रियाशील किया जा सकता है।

विचार-विमर्श

कारणों, खनिजों, खाद्य पदार्थों, पृथ्वी गोल है एवं वह सूर्य की परिक्रमा करती है आदि हजारों किस्म के तथ्यों की मानव ने खोज की, जिनसे उनके भौतिक एवं अभौतिक जीवन में काफी परिवर्तन आया।

1. **अविष्कार**(Invention): विज्ञान और प्रौद्यागिकी के जगत में मनुष्य के आविष्कार इतने अधिक हैं कि उनकी गिनती करना मुश्किल है। आविष्कारों ने मानव समाज में एक युगान्तकारी एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है।
2. **प्रसार**(Diffusion): सांस्कृतिक जगत के परिवर्तन में प्रसार का प्रमुख योगदान रहा है।पश्चिमीकरण,आधुनिकीकरण, एवं भूमंडलीकरणजैसी प्रक्रियाओं का मुख्य आधार प्रसार ही रहा है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी का इतना अधिक विकास हुआ है कि प्रसार की गति बहुत तेज हो गयी है।
3. **आन्तरिक विभेदीकरण**(Internal Differentiation): जब हम सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हैं, तो ऐसा लगता है कि परिवर्तन का एक चौथा स्रोत भी संभव है- वह है आन्तरिक विभेदीकरण। इस तथ्य की पुष्टि उद्विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory) के प्रवर्तकों के विचारों से होती है। उन लोगों का मानना है कि समाज में परिवर्तन समाज के स्वाभाविक उद्विकासीय प्रक्रिया से ही होता है। हरेक समाज अपनी आवश्यकताओं के अनुसार धीरे-धीरे विशेष स्थिति में परिवर्तित होता रहता है। समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने अपने उद्विकासीय सिद्धान्त में स्वतः चलने वाली आन्तरिक विभेदीकरण की प्रक्रिया पर काफी बल दिया है।[6]

परिणाम

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कई रूपों में प्रकट होती हैं, जैसे- उद्विकास, प्रगति, विकास, सामाजिक आन्दोलन, क्रांति इत्यादि। चूँकि इन सामाजिक प्रक्रियाओं का सामाजिक परिवर्तन से सीधा संबंध है या कभी-कभी इन संबंधों को सामाजिक परिवर्तन का पर्यायवाची माना जाता है, इसलिए इन शब्दों के अर्थ के संबंध में काफी उलझनें हैं। इनका स्पष्टीकरण निम्नलिखित हैं।

उद्विकास

'उद्विकास' (Evolution) शब्द का प्रयोग सबसे पहले जीवविज्ञान के क्षेत्र में चार्ल्स डार्विन ने किया था। डार्विन के अनुसार उद्विकास की प्रक्रिया में जीव की संरचना सरलता से जटिलता (Simple to Complex) की ओर बढ़ती है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक चयन (Natural Selection) के सिद्धान्त पर आधारित है। आरंभिक समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने जैविक परिवर्तन (Biological Changes) की भाँति ही सामाजिक परिवर्तन को भी कुछ आन्तरिक शक्तियों के कारण संभव माना है और कहा है कि उद्विकास की प्रक्रिया धीरे-धीरे निश्चित स्तरों से गुजरती हुई पूरी होती है।[1]

उद्विकास की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मकीवर एवं पेज ने लिखा है कि उद्विकास एक किस्म का विकास है। पर प्रत्येक विकास उद्विकास नहीं है क्योंकि विकास की एक निश्चित दिशा होती है, पर उद्विकास की कोई निश्चित दिशा नहीं होती है। किसी भी क्षेत्र में विकास करना उद्विकास कहा जाएगा। मकीवर एवं पेज ने बताया है कि उद्विकास सिर्फ आकार में नहीं बल्कि संरचना में भी विकास है। यदि समाज के आकार में वृद्धि नहीं होती है और वह पहले से ज्यादा आन्तरिक रूप से जटिल हो जाता है तो उसे उद्विकास कहेंगे।[7]

प्रगति

परिवर्तन जब अच्छाई की दिशा में होता है तो उसे हम प्रगति (Progress) कहते हैं। प्रगति सामाजिक परिवर्तन की एक निश्चित दिशा को दर्शाता है। प्रगति में समाज-कल्याण और सामूहिक-हित की भावना छिपी होती है। ऑगबर्न एवं निमकॉफ ने बताया है कि प्रगति का अर्थ अच्छाई के निमित्त परिवर्तन है। इसलिए प्रगति इच्छित परिवर्तन है। इसके माध्यम से हम पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को पाना चाहते हैं। मकीवर एवं पेज आगाह करते हुए कहा है कि हम लोगों को उद्विकास और प्रगति को एक ही अर्थ में प्रयोग नहीं करना चाहिए। दोनों बिल्कुल अलग-अलग अवधारणाएँ हैं।

विकास

जिस प्रकार उद्विकास के अर्थ बहुत स्पष्ट एवं निश्चित नहीं हैं, विकास (Development) की अवधारणा भी बहुत स्पष्ट नहीं है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में विकास का अर्थ सामाजिक विकास से है। प्रारंभिक समाजशास्त्रियों विशेषकर कौंत, स्पेन्सर एवं हॉबहाउस ने 'सामाजिक उद्विकास', 'प्रगति', एवं 'सामाजिक विकास' को एक ही अर्थ में प्रयोग किया था। आधुनिक समाजशास्त्री इन शब्दों को कुछ विशेष अर्थ में ही इस्तेमाल करते हैं।

आज समाजशास्त्र के क्षे त्र में विकास से हमारा तात्पर्य मुख्यतः सामाजिक विकास से है। इसका प्रयोग विशेषकर उद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण के चलते विकसित एवं विकासशील देशों के बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिए होता है। सामाजिक विकास में आर्थिक विकास का भी भाव छिपा होता है और उसी के तहत हम परम्परागत समाज (Traditional Society), संक्रमणशील

समाज (Transitional Society) एवं आधुनिक समाज (Modern Society) की चर्चा करते हैं। आधुनिक शिक्षा का विकास भी एक प्रकार का सामाजिक विकास है। उसी तरह से कृषि पर आधारित सामाजिक व्यवस्था से उद्योग पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की ओर अग्रसर होना भी सामाजिक विकास कहा जाएगा। दूसरे शब्दों में, सामन्तवाद (Feudalism) से पूँजीवाद (Capitalism) की ओर जाना भी एक प्रकार का विकास है।

सामाजिक आन्दोलन

सामाजिक आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन का एक बहुत प्रमुख कारक रहा है। विशेषकर दकियानूसी समाज में सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा काफी परिवर्तन आए हैं। गिडेन्स के अनुसार सामूहिक आन्दोलन व्यक्तियों का ऐसा प्रयास है जिसका एक सामान्य उद्देश्य होता है और उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्थागत सामाजिक नियमों का सहारा न लेकर लोग अपने ढंग से व्यवस्थित होकर किसी परम्परागत व्यवस्था को बदलने का प्रयास करते हैं।

गिडेन्स ने कहा है कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि सामाजिक आन्दोलन और औपचारिक संगठन (Formal Organization) एक ही तरह की चीजें हैं, पर दोनों बिल्कुल भिन्न हैं। सामाजिक आन्दोलन के अन्तर्गत नौकरशाही व्यवस्था जैसे नियम नहीं होते, जबकि औपचारिक व्यवस्था के अन्तर्गत नौकरशाही नियम-कानून की अधिकता होती है। इतना ही नहीं दोनों के बीच उद्देश्यों का भी फर्क होता है। उसी तरह से कबीर पंथ, आर्य समाज, ब्रह्मो समाज या हाल का पिछड़ा वर्ग आन्दोलन (Backward Class Movement) को सामाजिक आन्दोलन कहा जा सकता है। औपचारिक व्यवस्था नहीं।[8]

क्रांति

सामाजिक आन्दोलन से भी ज्यादा सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम क्रांति (Revolution) है। क्रांति के द्वारा सामाजिक परिवर्तन के अनगिनत उदाहरण मौजूद हैं। लेकिन पिछली दो-तीन शताब्दियों में मानव इतिहास में काफी, बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ आई हैं, जिससे कुछ राष्ट्रों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में युगान्तकारी परिवर्तन हुए हैं। इस संदर्भ में 1775-83 की अमेरिकी क्रांति एवं 1789 की फ्रांसीसी क्रांति विशेष रूप से उललेखनीय हैं। इन क्रांतियों के चलते आज समस्त विश्व में स्वतंत्रता (Liberty), सामाजिक समानता और प्रजातंत्र की बात की जाती है। उसी तरह से रूसी क्रांति और चीनी क्रांति का विश्व स्तर पर अपना ही महत्व है। अब्राम्स (Abrams, 1982) ने बताया है कि विश्व में अधिकांश क्रांतियाँ मौलिक सामाजिक पुनर्निमाण के लिए हुई हैं। अरेंड (Nannah Arendt, 1963) के अनुसार क्रांतियों का मुख्य उद्देश्य परम्परागत व्यवस्था से अपने-आपको अलग करना एवं नये समाज का निर्माण करना है। इतिहास में कभी-कभी इसका अपवाद भी देखने को मिलता है। कुछ ऐसी भी क्रांतियाँ हुई हैं, जिनके द्वारा हम समाज को और भी पुरातन समय में ले जाने की कोशिश करते हैं।

निष्कर्ष

दूसरे प्रकार के सामाजिक प्रक्रम अपने से बाहर किंतु किसी सामान्य व्यवस्था के अंग के रूप में संतुलन करने या बढ़ने की दृष्टि से देखे जा सकते हैं। सामाजिक परिवर्तन चब एक संस्था के लक्षणों में आते हैं तो कई बार उस संस्था की संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था या अन्य विभागों से बना हुआ संबंध बदल जाता है। पहले के संतुलन घट-बढ़ जाते हैं और किसी भी दिशा में प्रक्रम चालू हो जाते हैं। परिवारों के छोटे होने के साथ संयुक्त परिवार के ्ह्रास के फलस्वरूप वृद्ध व्यक्तियों का परिवार या ग्राम से संबंध बदलता सा दिखाई पड़ रहा है। सामंतशाही के सदृढ़ संबंध एकाएक उस युग के प्रमुख व्यक्तियों के लिए एक नई समस्या लेकर आए हैं। इस भांति के परिवर्तनों को समझने का आधारभूत तत्व समाज के एक अंग की पूर्वावस्था के संतुलन को नई अवस्था की समस्याओं से तुलना करने में है। इस प्रकार के परिवर्तन संतुलन बढ़ाने या घटाने वाले हो सकते हैं। संतुलन एक अंग का अन्य अंगों से देखा जा सकता है।

दो व्यक्ति या समूह जब एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वीकृत साधनों के उपयोग द्वारा प्रयत्न करते हैं तो यह क्रिया प्रतियोगिता कहलाती है। इसमें लक्ष्य प्राप्ति के साधन सामान्य होते हैं। कभी-कभी नियमावली तक प्रकाशित हो जाती है। ओलंपिक खेल तथा खेल की विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ इसकी सूचक हैं। परीक्षा के नियमों के अंतर्गत प्रथम स्थान प्राप्त करना दूसरा उदाहरण है। जब नियमो को भंग कर, या उनकी अवहेलना कर लक्ष्य प्राप्ति के लिए विपक्षी को नियमों से परे हानि पहुँचाकर प्रयास किए जाएँ तो वे संघर्ष कहलाएँगे। राजनीतिक दलों में प्रतियोगिता मूल नियमों को सदृढ़ बनाती हैं; उनमें होने वाले संघर्ष नियमों को ही क्षीण बनाते हैं और इस प्रकार अव्यवस्था फैलाते हैं। कभी-कभी छोटे संघर्ष बड़ी एकता का सर्जन करते हैं। बाहरी आक्रमण के समय भीतरी संगठन कई बार एक हो जाते हैं, कभी-कभी ऐसा कुव्यवस्था जड़ पकड़ लेती है कि उसे साधारण से परे ढंग से भी नहीं हटाया जा सकता। यह आवश्यक नहीं कि संघर्ष का फल सदा समाज के अहित में हो, किंतु उस प्रक्रम में नियमों के अतिरिक्त होने वाले प्रभावात्मक कदम अवश्य उठ जाते हैं।

एक समाज या संस्कृति का दूसरे समाज या संस्कृति से जब मुकाबला होता है तो कई बार एक के तत्व दूसरे में तथा दूसरे के पहले में आने लगते हैं। संस्कृति के तत्वों का इस भाँति का ग्रहण अधिकतर सीमित एवं चुने हुए स्थलों पर ही होता है। नाश्ते में अंग्रेजों से चाय ग्रहण कर ली गई पर मक्खन नहीं; घड़ियों का उपयोग बढ़ा पर समय पर काम करने की आदत उतनी व्यापक नहीं हुई; कुर्सियों पर पलथी मार कर बैठना तथा नौकरी दिलाने में जाति को याद करना इसी प्रकार के परिवर्तन हैं। दर समाज में वस्तुओं के उपयोग के साथ कुछ नियम और प्रतिबंध हैं, कुछ मान्यताएँ तथा विधियाँ हैं और उनकी कुछ उपादेयता है। एक वस्तु का जो स्थान एक समाज मे है, उसका वही स्थान इन सभी बिंदुओं पर दूसरे समाज में हो जाए यह आवश्यक नहीं। भारत में मोटर और टेलीफोन का उपयोग सम्मान वृद्धि के मापक के रूप में है, जबकि अमरीका में वह केवल सुविधा मात्र का; कुछ देशों में परमाणु बम रक्षा का आधार है, कुछ में प्रतिष्ठा का। इस भाँति संस्कृति का प्रसार समाज की आवश्यकताओं, मान्यताओं तथा सामाजिक संरचना द्वारा प्रभावित हो जाता है। इस प्रक्रिया में नई व्यवस्थाओं एवं वस्तुओं के कुछ ही लक्षण ग्रहण किए जाते हैं। इसे अंग्रेजी में एकल्चरेशन कहा गया है। कल्चर (संस्कृति) में

जब किसी नई वस्तु का आंशिक समावेश किया जाता है तो उस अंश ग्रहण को इस शब्द से व्यक्त किया गया है।

जब किसी संस्कृति के तत्व को पूर्णरूपेण नई संस्कृति में समाविष्ट कर लिया जाए तब उस प्रक्रिया को ऐसिमिलेशन (आत्मीकरण) कहा जाता है। इस शब्द का बोध है कि ग्रहण किए गए लक्षण या वस्तु को इस रूप में संस्कृति का भाग बना लिया है, मानो उसका उद्गम कभी विदेशी रहा ही न हो। आज के रूप में वह संस्कृति का इतना अभिन्न अंग बन गया है कि उसके आगमन का स्रोत देखने की आवश्यकता का मान तक नहीं हो सकता। हिंदी का खड़ी बोली का स्वरूप हिंदी भाषी प्रदेश में आज उतना ही स्वाभाविक है जितना उनके लिए आलू का उपयोग या तंबाकू का प्रचलन। भारत में शक, हूण और सीथियन तत्वों का इतना समावेश हो चुका है कि उनका पृथक् अस्तित्व देखना ही मानो निरर्थक हो गया है। एक भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द इसी रूप में अपना स्थान बना लेते हैं, जैसे पंडित का अंग्रेजी में या रेल मोटर का हिंदी में समावेश हो गया है। बाहरी व्यवस्था से प्राप्त तत्व जब अभिन्न रूप से आंतरिक व्यवस्था का भाग बन जाता है तब उस प्रक्रम को आत्मीकरण कहा जाता है।

एक ही समाज के विभिन्न भाग जब एक-दूसरे का समर्थन करते हुए सामाजिक व्यवस्था को अखंड बनाए रखने में योगदान करते रहते हैं तो उस प्रक्रम को इंटेग्रेशन (एकीकरण) कहा जाता है। इस प्रकार के समाज की ठोस रचना कई बार समाज को बलवान् बनाते हुए नए विचारों से विहीन बना देती है। नित्य नए परिवर्तनों के बीच एकमात्र ठोस व्यवस्ता स्वयं में संतुलन खो बैठती है। अत: अपेक्षित है कि जीवित सामाजिक व्यवस्था अपने अंदर उन प्रक्रियाओं को भी प्रोत्साहन हे, जिनसे नई अवस्थाओं के लिए नए संतुलन बन सकें; इस दृष्टि से पूर्ण संगठित समाज स्वयं में कमजोरी लिए होता है। गतिशील समाज में कुछ असंतुलन आवश्यक है किंतु मुख्य बात देखने की यह है कि उसमें नित्य नए संतुलन तथा समस्या समाधान के प्रक्रम किस स्वास्थ्यप्रद ढंग से चलते हैं। प्रत्येक समाज में सहयोग एवं संघर्ष की प्रक्रियाएँ सदा चलते हैं। प्रत्येक समाज में सहयोग एवं संघर्ष की प्रक्रियाएँ सदा चलती रहती हैं और उनके बीच व्यवस्था बनाए रखना हर समाज के बने रहने के लिए ऐसी समस्या है जिसके समाधान का प्रयत्न करते रहना आवश्यक है।[9]

संदर्भ

[हर्बर्ट स्पेंसर: First Principles of a New System of Philosophy (1862)]

कार्ल मार्क्स ने पूंजीवाद समाज के विकास की बात करते हुए कहा की पूंजीवाद का विकास उत्पादन के साधन के आधार पर होता है।

मैक्स वेबर का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत कार्ल के परिवर्तन सिद्धांत का संशोधित रूप है इसलिए इसमें मार्क्स के सामाजिक परिवर्तन की झलक दिखाई पड़ती है।

ईसाई धर्म -इसके अंतर्गत कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट धर्म का अध्ययन करते हैं और बताते हैं कि प्रोटेस्टेन्ट धर्म की आचार संहिता ऐसी है की लोगों के अंदर पूँजी कमाने का जूनून पैदा कर देत है जिसके कारण यहाँ पूंजीवाद की स्थापना हुई।

हिन्दू धर्म -इस धर्म में पैसा कमाने का जूनून नहीं था। इस धर्म का सारतत्व जाति व्यवस्था है। यहाँ ऐसी कोई विचारधारा या आचार संहिता नहीं पायी जाती। यहाँ मोक्ष प्राप्त करना ही मुख्य लक्ष्य है।

बौद्ध धर्म -इस धर्म में भी ऐसी कोई विचारधारा या आचार संहिता नहीं पायी जाती थी जो पूँजी कमाने का जूनून पैदा करे।

इस्लाम धर्म -इस धर्म में भी ऐसी कोई आचार संहिता नहीं पायी जाती थी जिससे पूँजी कमाने का जूनून पैदा हो।

यहूदी धर्म -इस धर्म में पूँजी कमाने की प्रवृत्तियां तो हैं परन्तु यह एक प्रथा है।यहाँ लोग ब्याज के माध्यम से पूँजी कमाते हैं इसे Pariha Capitalism कहते हैं। परन्तु यहाँ इस प्रकार की कोई आचार संहिता नहीं पायी जाती थी जिससे पूँजी कमाने का जूनून पैदा हो।

कन्फ्यूशियस धर्म -यहाँ वह आचार संहिता पायी जाती थी जो पूंजीवाद को जन्म दे सकती थी जैसी की प्रोटेस्टेन्ट धर्म में पायी जाती थी किन्तु चीन में पूंजीवाद नहीं आया इसका कारण जानने के लिए वेबर ने चीन की सामाजिक संरचना का अध्ययन किया तो पाया की यहाँ पर तार्किकता नहीं आयी थी और न ही आर्थिक तत्त्व पाए जाते हैं जबकि यूरोप में तार्किकता आ चुकी थी।यहाँ मुद्रा और बैंकिंग जैसे आर्थिक तत्त्व पाए जाते थे जिसके कारण पूंजीवाद आया।